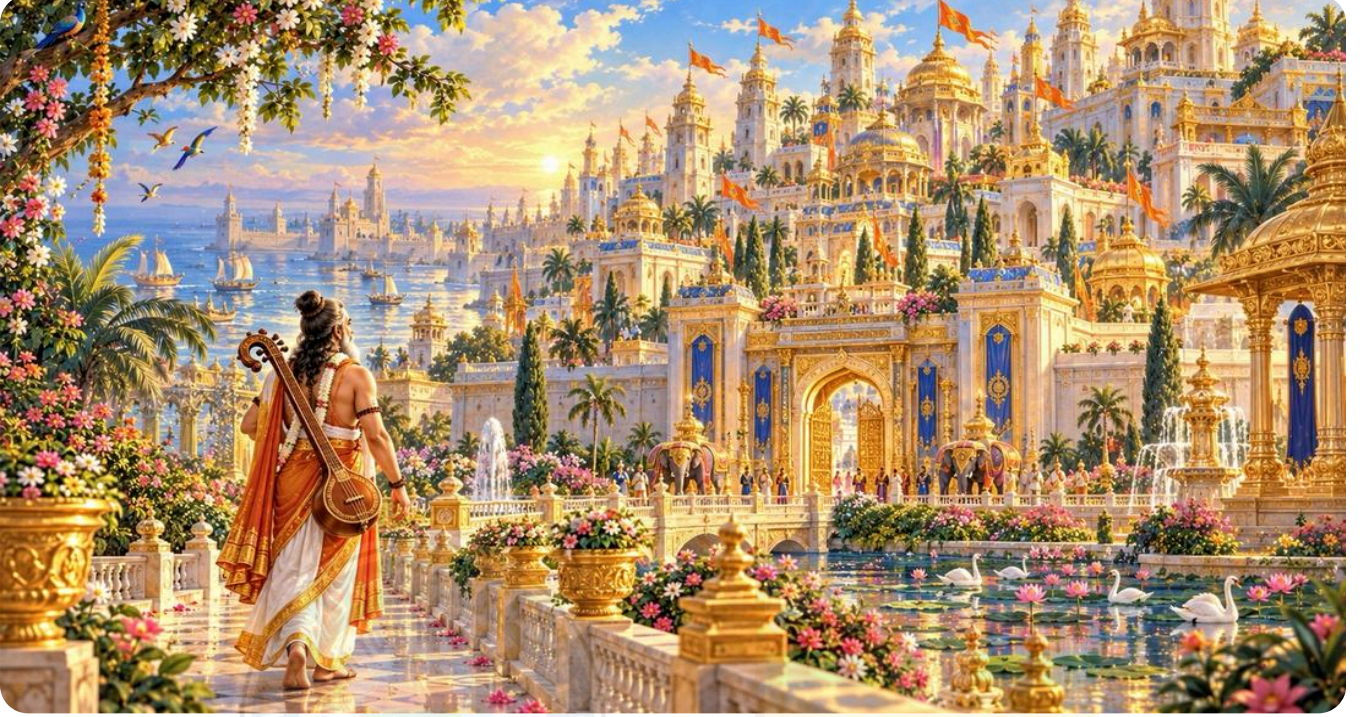


श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 10 अध्याय 69 — द्वारका में नारद

5 October 2026



यह देखने की उत्सुकता लिए कि एक ही प्रभु सोलह हजार रानियों के साथ एक साथ कैसे रहते हैं, देवर्षि नारद द्वारका में प्रवेश करते हैं — और हर एक घर में श्रीकृष्ण को पूर्ण रूप से उपस्थित पाते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की हमारी भक्तिमयी यात्रा। दशम स्कन्ध के इस उनहत्तरवें अध्याय में हम देवर्षि नारद के साथ द्वारका के रत्नजटित महलों में चलते हैं, जहाँ बुद्धि से परे एक आश्चर्य खुलता है और स्वयं भगवान बताते हैं कि वे ऐसा जीवन क्यों जीते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 10 (दशम स्कन्ध, उत्तरार्ध)
- अध्याय: 69 (एकोनसप्ततितम अध्याय)

- अध्याय शीर्षक: श्रीकृष्ण के द्वारका-महलों में नारद मुनि का आगमन
- मुख्य वक्ता: श्री शुकदेव गोस्वामी (राजा परीक्षित को सुनाते हुए); कथा के भीतर देवर्षि नारद और भगवान श्रीकृष्ण
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित
- मुख्य स्थल: द्वारका — भगवान श्रीकृष्ण के सोलह हजार महलों का अन्तःपुर
- केंद्रीय विषय: प्रभु के महलों में नारद का आगमन; ऋषि की विनम्र पूजा; एक ही प्रभु का गृहस्थ रूप में हर महल में होना; नारद की प्रार्थना और भगवान का उत्तर
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध 10, अध्याय 69, श्लोक 1-45
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2)

पूर्व अध्याय का संदर्भ

अड़सठवें अध्याय में श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को हर ले गए और कौरवों द्वारा बन्दी बना लिए गए। बलराम उन्हें छुड़ाने गए, अभिमानी कौरवों से अपमानित हुए, और क्रोध में हल से हस्तिनापुर को गंगा की ओर खींचने लगे, जब तक कौरवों ने क्षमा न माँगी। वे साम्ब और वधू के साथ द्वारका लौटे।

नारद का विस्मय और द्वारका का वैभव

अब शुकदेवजी एक शान्त आश्चर्य की ओर मुड़ते हैं। समाचार फैल चुका था कि श्रीकृष्ण ने नरकासुर का वध किया और उस दैत्य की बन्दी हजारों राजकुमारियों से अकेले ही विवाह किया। यह सुनकर देवर्षि नारद के हृदय में यह देखने की लालसा जगी कि प्रभु उन सबके साथ कैसे रहते हैं। इस विचार मात्र से वे चकित रह गए।

चित्रं बतैतदेकेन वपुषा युगपत् पृथक् ।

गृहेषु द्व्यष्टसाहसं स्त्रिय एक उदावहत् ॥ २ ॥

citraṁ bataitad ekena vapuṣā yugapat pṛthak gṛheṣu dvya-ṣṭa-sāhasraṁ striya eka udāvahat

अर्थ: कैसा आश्चर्य है कि एक ही पुरुष ने एक ही शरीर से, एक ही समय में, अलग-अलग घरों में सोलह हजार स्त्रियों का पाणिग्रहण किया! (स्कन्ध 10, अध्याय 69, श्लोक 2)

इसी उत्सुकता से भरे नारद द्वारका आए। नगरी ने उनका स्वागत खिले उपवनों से किया, जो पक्षियों के कलरव और भ्रमर-गुंजन से गूँज रहे थे; उसके सरोवर रंग-बिरंगे कमलों से ढके थे, जहाँ हंस और सारस बोल रहे थे। वहाँ स्फटिक और चाँदी के नौ लाख भवन खड़े थे, मरकत-जड़ित और स्वर्ण-रत्नों से सुसज्जित। सड़कें, चौक, बाज़ार, सभा-भवन और देवालय सुव्यवस्थित थे, मार्गों पर जल छिड़का था, और लहराती पताकाएँ धूप रोकती थीं।

उस नगरी के हृदय में श्रीकृष्ण के महलों का अन्तःपुर था, जिसे सब लोकपाल सम्मान देते थे और जिसमें देवशिल्पी विश्वकर्मा ने अपना पूरा कौशल उँडेल दिया था। उसमें सोलह हजार भवन थे — प्रभु की रानियों के घर। नारद ने उनमें से एक विशाल महल चुना और भीतर गए।

रुक्मिणी के महल में: प्रभु ऋषि के चरणों में झुकते हैं

भीतर ऋषि ने पार्थिव कल्पना से परे एक निवास देखा: मूँगे के स्तम्भ, वैदूर्य के फलक, इन्द्रनील की दीवारें और कभी मन्द न पड़ने वाली आभा का फ़र्श; विश्वकर्मा के बनाए मोतियों की लड़ियों वाले चँदोवे, और रत्नजड़ित हाथीदाँत के पलंग। स्वर्ण-हार पहने दासियाँ तथा कंचुक-पगड़ी धारी सेवक घर की सेवा में थे। रत्नदीपों ने हर छाया दूर कर दी थी, और चित्रित छज्जों पर मोर, झरोखों से निकलते अगरु-धूम को बादल समझकर, कूकते और नाचते थे।

वहाँ नारद ने सात्वतपति को उस घर की स्वामिनी रुक्मिणी के साथ विराजमान देखा। यद्यपि गुण, रूप, वय और वेश में उनके समान सहस्रों दासियाँ हर क्षण सेवा में थीं, फिर भी वे स्वयं स्वर्णदण्ड वाले चँवर से प्रभु पर पंखा झल रही थीं।



रुक्मिणी के महल में प्रभु नारद को देखते ही उठ खड़े होते हैं, ऋषि के चरणों में किरीटधारी मस्तक झुकाते हैं, उन्हें अपने आसन पर बिठाते हैं और उनके चरण धोते हैं — वे जिन्हें संसार ठीक ही ब्रह्मण्यदेव कहता है (श्लोक 13-16)।

ऋषि को देखते ही प्रभु श्री के पलंग से उठ खड़े हुए। समस्त धर्मधारियों में श्रेष्ठ उन्होंने किरीटधारी मस्तक नारद के चरणों में झुकाया और हाथ जोड़कर उन्हें अपने ही आसन पर बिठाया। फिर अतिथि के चरण धोकर वह जल अपने मस्तक पर धारण किया — वे, जिनका अपना चरणोदक गंगा समस्त जगत को पावन करता है।

तस्यावनिज्य चरणौ तदपः स्वमूर्ध्ना
बिभ्रज्जगद्गुरुतमोऽपि सतां पतिर्हि ।
ब्रह्मण्यदेव इति यद्गुणनाम युक्तं
तस्यैव यच्चरणशौचमशेषतीर्थम् ॥ १५ ॥

*tasyāvanijya caraṇau tad-apah sva-mūrdhnā bibhraj jagad-gurutamo 'pi satāṁ patir hi
brahmaṇya-deva iti yad guṇa-nāma yuktaṁ tasyaiva yac-caraṇa-śaucam aśeṣa-tīrtham*

अर्थ: यद्यपि वे जगत के परम गुरु और सन्तों के स्वामी हैं, फिर भी उन्होंने ऋषि के चरण धोकर वह जल अपने सिर पर धारण किया; “ब्रह्मण्यदेव” — ब्राह्मणों के भक्त देव — यह गुणवाचक नाम उन्हीं को शोभा देता है, जिनका अपना चरणोदक समस्त तीर्थों का सार है। (स्कन्ध 10, अध्याय 69, श्लोक 15)

फिर प्रभु ने — जो स्वयं नर-सखा पुराण ऋषि नारायण हैं — विधिपूर्वक देवर्षि-श्रेष्ठ नारद की पूजा की, और अमृत-सी मधुर, नपी-तुली वाणी में विनम्रता से पूछा: “भगवन्, हम आपकी क्या सेवा करें?”

नारद की प्रार्थना

ऋषि ने उत्तर दिया कि समस्त लोकों के स्वामी का कोई कार्य उन्हें चकित नहीं कर सकता: श्रीकृष्ण सब प्राणियों से मैत्री रखें और दुष्टों का दमन करें, यह स्वाभाविक है, क्योंकि वे स्वेच्छा से जगत के कल्याण और रक्षा के लिए अवतरित हुए हैं। फिर नारद ने बताया कि उस दिन उन्हें स्वयं क्या मिला।

दृष्टं तवाङ्घ्रियुगलं जनतापवर्गं
ब्रह्मादिभिर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
ध्यायंश्चराम्यनुगृहाण यथा स्मृतिः स्यात् ॥ १८ ॥

*dr̥ṣṭam̐ tavāṅghri-yugalam̐ janatāpavargam̐ brahmāḍibhir̐ hṛḍi vicintyam̐ agādha-bodhaiḥ
saṁsāra-kūpa-patitottaraṇāvalambam̐ dhyāyam̐ś carāmy anugṛhāṇa yathā smṛtiḥ syāt*

अर्थ: मैंने आपके उन दोनों चरणों के दर्शन किए हैं जो मनुष्यों को मोक्ष देते हैं, जिनका अगाध बुद्धि वाले ब्रह्मा आदि अपने हृदय में चिन्तन करते हैं, और जो संसार-कूप में गिरे हुआ के लिए ऊपर चढ़ने की रस्सी हैं। मुझ पर कृपा कीजिए कि मैं उनका ध्यान करता हुआ विचरण करूँ और उनकी स्मृति मुझसे कभी न छूटे। (स्कन्ध 10, अध्याय 69, श्लोक 18)

ऋषि बस यही एक वर माँगते हैं: न धन, न शक्ति, न मुक्ति तक — केवल प्रभु के चरणों का अखण्ड स्मरण।

चौसर का खेल और ऋषि को चकित करने वाला प्रश्न

योगेश्वरों के ईश्वर की योगमाया को समझने की इच्छा से नारद फिर दूसरी रानी के महल में गए। वहाँ श्रीकृष्ण अपनी प्रिया और उद्धव के साथ चौसर खेल रहे थे। यहाँ भी प्रभु तुरन्त उठे, आसन दिया और परम भक्ति से उनकी पूजा की।



अगले महल में श्रीकृष्ण रानी और उद्धव के साथ चौसर खेल रहे हैं; वे फिर उठकर ऋषि का सम्मान करते हैं और मानो पहली बार पूछते हैं, 'आप कब पधारे?' — नारद अवाक् रह जाते हैं (श्लोक 19-22)।

पृष्टश्चाविदुषेवासौ कदायातो भवानिति ।

क्रियते किं नु पूर्णानामपूर्णेस्मदादिभिः ॥ २१ ॥

prṣṭaś cāviduṣevāsau kadāyāto bhavān iti kriyate kiṁ nu pūrṇānām apūrṇair asmad-ādibhiḥ

अर्थ: मानो ऋषि के पहले आ चुकने की उन्हें कोई जानकारी ही न हो, प्रभु ने पूछा, “आप कब पधारे? और जो स्वयं में पूर्ण हैं, उनके लिए हम-जैसे अपूर्ण जन भला क्या सेवा कर सकते हैं?” (स्कन्ध 10, अध्याय 69, श्लोक 21)

“फिर भी, हे ब्रह्मन्,” श्रीकृष्ण ने जोड़ा, “हमें आज्ञा दीजिए और हमारा यह जन्म सफल कीजिए।” जिन प्रभु ने अभी-अभी रुक्मिणी के महल में उनकी पूजा की थी, वही अब उन्हें नवागत अतिथि की तरह मिल रहे थे। विस्मित नारद चुपचाप उठे और एक ओर घर की ओर बढ़े।

सोलह हज़ार घरों में एक ही प्रभु

उस घर में गोविन्द अपने छोटे-छोटे पुत्रों को दुलार रहे थे। अगले में स्नान की तैयारी कर रहे थे। और यह क्रम महल-दर-महल चलता रहा: कहीं प्रभु यज्ञाग्नि में आहुति दे रहे थे, कहीं पंच-महायज्ञ कर रहे थे; कहीं ब्राह्मणों को भोजन करा रहे थे, कहीं उनका बचा प्रसाद पा रहे थे। कहीं सन्ध्या-उपासना में बैठे थे, कहीं मौन गायत्री-जप कर रहे थे। किसी महल में गद के बड़े भाई तलवार-ढाल का अभ्यास कर रहे थे; किसी में घोड़ों, हाथियों और रथों पर सवारी कर रहे थे; कहीं पलंग पर विश्राम करते हुए वन्दीजनों की स्तुति सुन रहे थे।



महल-दर-महल नारद उन्हीं प्रभु को भिन्न-भिन्न कर्तव्य में पाते हैं — यज्ञ, मन्त्रणा, पुत्रों से खेल, सन्ध्या, बलराम के साथ विचार — हर एक में सम्पूर्ण उपस्थित (श्लोक 23-

36)।

किसी सभा में वे उद्धव और मन्त्रियों से मन्त्रणा कर रहे थे; कहीं राजसभा की नर्तकियों के साथ जलक्रीड़ा में मग्न थे। कहीं श्रेष्ठ ब्राह्मणों को अलंकृत गौएँ दान कर मंगलमय इतिहास-पुराण सुन रहे थे। किसी घर में प्रिय रानी के साथ हास-परिहास में हँस रहे थे; कहीं धर्म-पालन में, कहीं न्यायोचित अर्थ-साधन में, कहीं गृहस्थ के विहित भोगों में लगे थे। कहीं अकेले बैठे प्रकृति से परे परम पुरुष का ध्यान कर रहे थे; कहीं गुरुजनों को मनचाहे भोग और पूजा अर्पित कर उनकी सेवा कर रहे थे। कहीं शत्रुओं से युद्ध की योजना बना रहे थे, कहीं सन्धि कर रहे थे। कहीं बलराम के साथ सत्पुरुषों के कल्याण पर विचार कर रहे थे; कहीं पुत्र-पुत्रियों के विवाह वैभव से सम्पन्न करा रहे थे, और लोग उन महोत्सवों पर विस्मित होते थे जिनके साथ वे कन्याओं को ससुराल भेजते और लौटने पर स्वागत करते थे। कहीं महान यज्ञों से सब देवताओं की आराधना कर रहे थे; कहीं लोकहित के लिए कुएँ, बाग़ और मठ बनवा रहे थे। कहीं यदुवीरों के साथ सैन्धव घोड़े पर मृगया में यज्ञ-योग्य पशुओं का आखेट कर रहे थे; कहीं प्रजा के मन के भाव जानने के लिए अन्तःपुर और नगर में अपरिचित रूप में विचर रहे थे।

हर घर में प्रभु पूर्ण उपस्थित थे — न विभाजित, न व्यग्र।

नारद बोलते हैं और प्रभु उत्तर देते हैं

मनुष्य-पथ पर चलने वाले प्रभु में योगमाया का यह प्रकाश देखकर नारद हृषीकेश की ओर मुड़े और मानो हँसते हुए बोले। “हे योगेश्वर, आपकी इन योग-शक्तियों को हम जानते हैं, जो ब्रह्मा-जैसे मायावियों को भी दुर्लभ हैं; आपके चरणों की सेवा से वे हम पर प्रकट हुई हैं। अब मुझे अनुमति दीजिए, प्रभो, कि आपके यश से आप्लावित लोकों में घूमता हुआ मैं आपकी भुवनपावनी लीलाओं का उच्च स्वर में गान करूँ।”



नारद प्रभु की लीलाएँ गाते हुए लोकों में विचरने की अनुमति माँगते हैं, और श्रीकृष्ण उत्तर देते हैं कि वे धर्म कहते, पालते और अनुमोदित करते हैं, और संसार को सिखाने के लिए स्वयं उसका आचरण करते हैं (श्लोक 37-40)।

तब भगवान ने ऋषि को इस अध्याय का सबसे गहरा वचन दिया।

ब्रह्मन् धर्मस्य वक्ताहं कर्ता तदनुमोदिता ।

तच्छिक्षयन् लोकमिममास्थितः पुत्र मा खिदः ॥ ४० ॥

brahman dharmasya vaktāhaṁ kartā tad-anumoditā tac chikṣayan lokam imam āsthitaḥ putra mā khidaḥ

अर्थ: हे ब्रह्मन्, मैं धर्म का उपदेशक हूँ, उसका आचरण करने वाला हूँ, और दूसरों में उसका अनुमोदन करने वाला भी; इस लोक को शिक्षा देने के लिए मैं स्वयं उसका पालन करता हूँ। हे पुत्र, व्याकुल मत हो। (स्कन्ध 10, अध्याय 69, श्लोक 40)

यहीं इस अध्याय का हृदय है। जिन्हें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं, वे सबके स्वामी एक ऋषि के लिए क्यों उठते हैं, उनके चरण क्यों धोते हैं, नित्य-उपासना, ब्राह्मण-भोजन और गुरु-सेवा क्यों करते हैं? क्योंकि संसार धर्म उन्हें देखकर सीखता है जिन्हें वह पूजता है। यदि स्वयं भगवान सन्तों का सम्मान करें और निष्ठावान गृहस्थ की तरह रहें, तो कोई नहीं कह सकता कि ऐसे कर्तव्य महान आत्मा के लिए तुच्छ हैं। सोलह हज़ार घर मानव-जीवन के सोलह हज़ार पाठ हैं, जो एक साथ वे पढ़ा रहे हैं जो अकेले सर्वत्र हो सकते हैं।

ऋषि उन्हें स्मरण करते हुए विदा लेते हैं

इस प्रकार ऋषि ने देखा कि वे एक ही श्रीकृष्ण हैं, जो हर घर में उपस्थित होकर गृहस्थ के पावन सद्धर्मों का आचरण कर रहे हैं। अनन्त पराक्रमी प्रभु की योगमाया का यह विराट प्रकाश बार-बार देखकर नारद विस्मय और कौतूहल से भर उठे। धर्म, अर्थ और विहित काम के प्रति श्रद्धावान श्रीकृष्ण से सम्मानित होकर वे प्रसन्न मन से, केवल उन्हीं का स्मरण करते हुए, विदा हुए।



प्रभु से सम्मानित और विस्मय से भरे नारद केवल श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए विदा लेते हैं; जो इन कर्मों को गाता या सुनता है, उसे प्रभु में भक्ति मिलती है (श्लोक 41-45)।

शुकदेवजी स्मरण दिलाते हैं कि जगत के कल्याण के लिए अपनी अचिन्त्य शक्ति धारण कर नारायण इस प्रकार मनुष्यों के बीच मनुष्य की तरह रहे — सोलह हज़ार कुलीन रानियों की लज्जा-भरी स्नेहिल चितवन और मुस्कानों से सेवित। और वे वह आशीर्वाद जोड़ते हैं जो इन लीलाओं के हर श्रोता की प्रतीक्षा करता है।

यानीह विश्वविलयोद्धवृत्तिहेतुः
कर्माण्यनन्यविषयाणि हरिश्चकार ।
यस्त्वङ्ग गायति शृणोत्यनुमोदते वा
भक्तिर्भविद् भगवति ह्यपवर्गमार्गे ॥ ४५ ॥

yāniha viśva-vilayodbhava-vṛtti-hetuḥ karmāṇy ananya-viṣayāṇi hariś cakāra yas tv aṅga gāyati śṛṇoty anumodate vā bhaktir bhaved bhagavati hy apavarga-mārge

अर्थ: हे प्रिय, विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और लय के कारण श्रीहरि ने इस लोक में जो कर्म किए — जो उनके सिवा किसी के लिए सम्भव नहीं — उन्हें जो गाता है, सुनता है या उनका अनुमोदन करता है, उसे उन भगवान में भक्ति प्राप्त होती है जो स्वयं मोक्ष का मार्ग हैं। (स्कन्ध 10, अध्याय 69, श्लोक 45)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. प्रभु पहले अपने भक्तों का सम्मान करते हैं। हर महल में श्रीकृष्ण उठते हैं, किरीटधारी मस्तक झुकाते हैं और ऋषि का चरणोदक सिर पर धारण करते हैं। परम पुरुष विनम्र पूजा को अपना अधिकार मानते हैं, अनुग्रह नहीं।

2. माँगने योग्य एकमात्र वर स्मरण है। नारद, जो कुछ भी माँग सकते थे, केवल यही माँगते हैं कि प्रभु के चरण उनके मन से कभी न हटें। ऐसा स्मरण ही भक्त का सर्वोच्च धन है।
3. प्रभु धर्म का आचरण उसे सिखाने के लिए करते हैं। वे धर्म कहते हैं, पालते हैं और उसका अनुमोदन करते हैं, ताकि संसार उनके उदाहरण से सीखे। पवित्र कर्तव्य महानता से कभी नीचे नहीं।
4. एक प्रभु, सर्वत्र, अविभाजित। नारद हर घर में एक साथ उन्हीं पूर्ण श्रीकृष्ण को पाते हैं। दिव्य उपस्थिति टुकड़ों में नहीं बँटती; प्रभु जहाँ हैं, पूरे हैं।
5. इन लीलाओं का श्रवण भक्ति जगाता है। श्रीहरि के इन अनुपम कर्मों का गान, श्रवण या उनमें आनन्दित होना भी भक्ति की ओर ले जाता है, और भक्ति मोक्ष की ओर।

एक भक्तिमय चिन्तन

हम प्रायः मान लेते हैं कि आध्यात्मिक जीवन वहीं शुरू होता है जहाँ साधारण जीवन समाप्त होता है — कि पवित्र तक पहुँचने से पहले काम, परिवार और कर्तव्य से भागना होगा। द्वारका में नारद की यात्रा इस धारणा को उलट देती है। वे प्रभु को किसी गुप्त एकान्त में नहीं पाते; उन्हें स्नान करते, बच्चों से खेलते, अतिथियों को खिलाते, बड़ों की सेवा करते, सन्ध्या में बैठे पाते हैं — हर साधारण कर्म एक ही उपस्थिति से आलोकित। और ऋषि महलों से चौंधियाए नहीं, केवल प्रभु को स्मरण करते हुए विदा लेते हैं। हमारे घर मूँगे और नीलम के नहीं, और हम एक साथ दो कमरों में नहीं हो सकते; पर सामने के एक कमरे में हम प्रभु से मिल सकते हैं और उसे पूरे ध्यान और श्रद्धा से कर सकते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज घर का कोई एक साधारण कर्तव्य चुनिए — भोजन बनाना, अतिथि का स्वागत, किसी बच्चे या बुजुर्ग की देखभाल — और उसे वैसे कीजिए जैसे श्रीकृष्ण ने द्वारका में किया: बिना जल्दबाज़ी, पूरी उपस्थिति से, प्रेम के पाठ की तरह अर्पित। आरम्भ से पहले नारद की एकमात्र माँग याद कीजिए, और प्रार्थना कीजिए कि प्रभु के चरणों का विचार उस काम भर आपके साथ रहे। धीरे-धीरे जपते हुए आरम्भ कीजिए: ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

उपसंहार

दशम स्कन्ध का यह उनहत्तरवाँ अध्याय नारद के विस्मय का उत्तर सिद्धान्त से नहीं, दर्शन से देता है: एक अविभाजित प्रभु, जो अपने हर घर में समान पूर्णता से रहते हैं, और एक ही श्लोक में बताते हैं कि वे ऐसा संसार को धर्म सिखाने के लिए करते हैं। हम इससे ऋषि का अपना खज़ाना लें — अपने सब दिनों के बीच श्रीकृष्ण के चरणों का स्मरण।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, भाग 2), दशम स्कन्ध (उत्तरार्ध), अध्याय 69।
- श्रृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण सहित दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में प्रस्तुत हैं। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संबंध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-10-chapter-69-narada-visits-krishnas-palaces-in-dvaraka-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

